Chapter अट्ठाईस

कृष्ण द्वारा वरुणलोक से नन्द महाराज की रक्षा

इस अध्याय में कृष्ण द्वारा वरुणलोक से नन्द महाराज के वापस लाये जाने और ग्वालों द्वारा वैकुण्ठ दर्शन करने का उल्लेख हुआ है।

गोपराज नन्द महाराज ने एकादशी के दिन व्रत रखा और विचार किया कि बारहवें दिन वे व्रत को विधिवत किस तरह से तोड़ें। संयोगवश केवल कुछ ही मिनट शेष थे अतएव उन्होंने रात्रि बीतने पर ही स्नान करने का निश्चय किया यद्यपि ज्योतिष के अनुसार यह अशुभ समय था। वे यमुना जल में घुसे। वरुण के सेवक समुद्र देवता ने नन्द महाराज को शास्त्रवर्जित समय में जल में प्रवेश करते देख लिया अत: वह उन्हें वरुणदेव के धाम ले गया। प्रात: होने पर ग्वाले व्यर्थ ही नन्द महाराज की खोज करते रहे किन्तु भगवान् कृष्ण ने तुरन्त ही स्थिति जान ली और वे वरुण के पास जा पहुँचे। वरुण ने कृष्ण की बड़ी आवभगत की। तत्पश्चात् उसने भगवान् से प्रार्थना की कि वे उसके सेवक को क्षमा कर दें जिसने गोपराज को मूर्खतावश बन्दी बना लिया था।

वरुणदेव के दरबार में श्रीकृष्ण के प्रभाव को देखकर नन्द चकित थे और घर वापस आकर उन्होंने अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से अपने अनुभव कह सुनाये। उन सबों ने सोचा कि कृष्ण अवश्य ही भगवान् हैं अत: उन्होंने उनके परम धाम को देखना चाहा। इस पर सर्वज्ञ भगवान् ने उन सबों को उसी

सरोवर में स्नान कराया जिसमें अक्रूर को परम सत्य का दर्शन हुआ था। वहीं पर भगवान् ने उन्हें ब्रह्मलोक दिखलाया जिसे बड़े बड़े मुनि अपनी योग-समाधि में अनुभव करते हैं।

श्रीबादरायणिरुवाच
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्यां द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्रीबादरायणि (शुकदेव गोस्वामी) ने कहा; एकादश्याम्—एकादशी के दिन; निराहारः—बिना खाये, उपवास करते हुए; समभ्यर्च्य—पूजा करने के बाद; जनार्दनम्—जनार्दन की, भगवान् की; स्नातुम्—स्नान करने के लिए (व्रत तोड़ने के पूर्व आवश्यक है); नन्दः—नन्द महाराज ने; तु—लेकिन; कालिन्द्याम्—यमुना नदी में; द्वादश्याम्—द्वादशी के दिन; जलम्—जल में; आविशत्—प्रवेश किया।

श्रीबादरायणि ने कहा : भगवान् जनार्दन की पूजा करके तथा एकादशी के दिन व्रत रखकर नन्द महाराज ने द्वादशी के दिन स्नान करने के लिए कालिन्दी के जल में प्रवेश किया।

तं गृहीत्वानयद्भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम् ।
अवज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; गृहीत्वा—पकड़कर; अनयत्—ले आया; भृत्यः—नौकर; वरुणस्य—समुद्र के स्वामी, वरुण का; असुरः—असुर के; अन्तिकम्—समक्ष; अवज्ञाय—अवहेलना करके; आसुरीम्—अशुभ; वेलाम्—समय; प्रविष्टम्—प्रवेश करके; उदकम्—जल में; निशि—रात्रि के समय।

चूँकि नन्द महाराज ने इस बात की अवहेलना करके कि यह अशुभ समय था, रात्रि के अंधकार में जल में प्रवेश किया था अतः वरुण का आसुरी सेवक उन्हें पकड़ कर अपने स्वामी के पास ले आया।

तात्पर्य : नन्द महाराज अपना व्रत द्वादशी को तोड़ने के इच्छुक थे और उसमें अब केवल कुछ ही क्षण शेष थे। अतः वे प्रभात होने के पूर्व अशुभ समय में स्नान करने के लिए जल में प्रविष्ट हुए।

वरुण के जिस सेवक ने नन्द महाराज को पकड़ा था उसे *असुर* कहा गया है, जिसके कारण स्पष्ट हैं। पहले तो वह सेवक इस बात से अनजान था कि नन्द महाराज परम सत्य के लीला के रूप में पिता हैं। दूसरे नन्द महाराज शास्त्रों के आदेशों का पालन करना चाह रहे थे अतएव वरुण के सेवक को इस बात के लिए उन्हें नहीं पकड़ना चाहिए था कि वे अशुभ वेला में यमुना-स्नान कर रहे थे। इसी अध्याय में आगे चलकर वरुण कहते हैं—*अजानता मामकेन मूढेन*—मेरे अज्ञानी नौकर ने यह किया

क्योंकि वह मूर्ख था। यह मूर्ख नौकर कृष्ण या नन्द महाराज या भगवद्भक्ति के विषय में कुछ नहीं जानता था।

सारांश यह कि भगवान् कृष्ण वरुण को अपना दर्शन देना चाहते थे और साथ ही अन्य उपदेशात्मक कार्य सम्पन्न करना चाहते थे। इस अद्भुत लीला का उद्घाटन आगे होगा।

चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः ।
भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ।
तदन्तिकं गतो राजन्स्वानामभयदो विभुः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

चुक्रुशुः—जोर से पुकारा; तम्—उसको, नन्द को; अपश्यन्तः—न देखकर; कृष्ण—हे कृष्ण; राम—हे राम; इति—इस प्रकार; गोपकाः—ग्वालों ने; भगवान्—भगवान् कृष्ण ने; तत्—वह; उपश्रुत्य—सुनकर; पितरम्—अपने पिता को; वरुण—वरुण द्वारा; आहृतम्—ले जाया गया; तत्—वरुण के; अन्तिकम्—समक्ष; गतः—गया; राजन्—हे राजा परीक्षित; स्वानाम्—अपने भक्तों के; अभय—निडरपन; दः—देने वाले; विभुः—सर्वशक्तिमान स्वामी।

हे राजन्, नन्द महाराज को न देखकर ग्वाले जोर से चिल्ला उठे, ''हे कृष्ण, हे राम,'' भगवान् कृष्ण ने उनकी चीखें सुनीं और समझ लिया कि मेरे पिता वरुण द्वारा बन्दी बना लिये गये हैं। अतः अपने भक्तों को निडर बनाने वाले सर्वशक्तिमान भगवान् वरुणदेव के दरबार जा पहुँचे।

तात्पर्य : विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि जब नन्द महाराज नदी में स्नान करने गये तो उनके साथ अनेक ग्वाले थे। जब नन्द महाराज बाहर नहीं निकले तो ग्वाले चिल्लाने लगे और भगवान् कृष्ण तुरन्त वहाँ आ गये। सारी स्थिति समझकर श्रीकृष्ण जल में घुसे और अपने पिता को छुड़ाने तथा एक देवता के त्रास से अन्य ग्वालों को मुक्त करने का निश्चय करके वरुणदेव के दरबार में गये।

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ।
महत्या पूजयित्वाह तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

प्राप्तम्—आया हुआ; वीक्ष्य—देखकर; हृषीकेशम्—इन्द्रियों के नियन्ता भगवान् कृष्ण को; लोक—उस लोक (जल) का; पालः—मुख्य देवता (वरुण); सपर्यया—सादर भेंटों के साथ; महत्या—बड़े पैमाने पर; पूजयित्वा—पूजा करके; आह—बोला; तत्—कृष्ण के; दर्शन—दर्शन से; महा—अत्यन्त; उत्सवः—हर्ष।

यह देखकर कि भगवान् हृषीकेश पधारे हैं, वरुणदेव ने धूमधाम से उनकी पूजा की। वह भगवान् को देखकर अत्यन्त प्रमुदित था और वह इस प्रकार बोला।

श्रीवरुण उवाच
अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो ।
त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-वरुणः उवाच—श्रीवरुण ने कहा; अद्य—आज; मे—मेरे द्वारा; निभृतः—सफलतापूर्वक पूरा किया गया; देहः—मेरा भौतिक शरीर; अद्य—आज; एव—निस्सन्देह; अर्थः—जीवन का लक्ष्य; अधिगतः—अनुभव किया जाता है; प्रभो—हे प्रभु; त्वत्—आपके; पाद—चरणकमल; भाजः—सेवा करने वाले, पात्र; भगवन्—हे परम पुरुष; अवापुः—प्राप्त हो गया; पारम्—चरमावस्था; अध्वनः—पथ की (सांसारिक)।

श्रीवरुण ने कहा : आज मेरे शरीर ने अपना कार्य पूरा कर लिया। हे प्रभु, निस्सन्देह अब मुझे अपना जीवन-लक्ष्य प्राप्त हो चुका। हे भगवन्, जो लोग आपके चरणकमलों को स्वीकार करते हैं, वे भौतिक संसार के मार्ग को पार कर सकते हैं।

तात्पर्य : भगवान् के भव्य शरीर को देखकर वरुण प्रसन्नता के मारे चीख उठता है कि भौतिक शरीर धारण करने का सारा कष्ट आज सुफल हो गया। निस्सन्देह वरुण को अपने जीवन का असली लक्ष्य, *अर्थ,* प्राप्त हो चुका था। चूँकि भगवान् कृष्ण का रूप दिव्य है अतएव जो उनके चरणकमलों को स्वीकार करते हैं, वे संसार की सीमा के परे चले जाते हैं अतएव जिन्हें आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है वे ही भगवान् के चरणकमलों को भौतिक मानेंगे।

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ।
न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—आपको; भगवते—भगवान् को; ब्रह्मणे—परम सत्य को; परम-आत्मने—परमात्मा को; न—नहीं; यत्र—जिसमें; श्रूयते—सुना जाता है; माया—माया, भौतिक शक्ति; लोक—इस जगत की; सृष्टि—सृष्टि; विकल्पना—व्यवस्था करती है।

हे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, परम सत्य परमात्मा, मैं आपको नमस्कार करता हूँ; आपके भीतर इस सृष्टि को अपने अनुरूप बनाने वाली माया-शक्ति का लेशमात्र भी नहीं है।

तात्पर्य : यहाँ पर *श्रूयते* शब्द सार्थक है। श्रुति या वैदिक साहित्य या तो साक्षात् भगवान् या उनके प्रबुद्ध प्रतिनिधियों के प्रामाणिक कथनों से युक्त है। इसलिए न तो भगवान् न ही मान्य आध्यात्मिक अधिकारीजन यह कभी कहेंगे कि भगवान् या परम सत्य में माया का दोष है। श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि यहाँ पर *ब्रह्मणे* शब्द बतलाता है कि भगवान् स्वयं में पूर्ण हैं और *परमात्मने* यह

सूचित करता है कि वे समस्त जीवों के नियन्ता हैं। इसलिए अपने में पूर्ण तथा सर्वशक्तिमान परम पुरुष के भीतर हमें भौतिक मायाशक्ति का कोई दखल नहीं दिखता।

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ।
आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ७॥

शब्दार्थ

अजानता—अज्ञानी; मामकेन—मेरे सेवक द्वारा; मूढेन—मूर्ख; अकार्य-वेदिना—अपने कर्तव्य को न जानने से; आनीत:—लाये गये; अयम्—यह व्यक्ति; तव—तुम्हारे; पिता—पिता; तत्—वह; भवान्—आप; क्षन्तुम् अर्हति—क्षमा कर दें।

यहाँ पर बैठे हुए आपके पिता मेरे एक मूर्ख अज्ञानी नौकर द्वारा मेरे पास लाये गये हैं, जो अपने कर्तव्य को नहीं समझता था। कृपा करके हमें क्षमा कर दें।

तात्पर्य : *अयम्* अर्थात् ''यह जो यहाँ है'' स्पष्टत: सूचित करता है कि जब वरुण बोल रहा था, तो कृष्ण के पिता नन्द महाराज वहाँ उपस्थित थे। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं कि वरुण ने वास्तव में श्रीनन्द को रत्नजटित सिंहासन पर आसीन कर रखा था और स्वयं उनकी सादर पूजा की थी।

एक तरह से नन्द महाराज का सूर्योदय के पूर्व जल में प्रवेश करना उचित था। श्रील जीव गोस्वामी ने इस अध्याय के प्रथम श्लोक की टीका में इसकी व्याख्या इस प्रकार की है : विशेषतया छोटी होने के कारण, एकादशी केवल १८ घंटे की थी अत: सूर्योदय के पूर्व ही द्वादशी के छ: घंटे बीत चुके थे जिनमें उपवास तोड़ना था। चूँकि सूर्योदय होने पर व्रत-भंग का सही समय बीत चुका होता इसलिए नन्द महाराज ने अन्यथा अशुभ समय में जल में प्रवेश करने का निश्चय किया।

वरुण का सेवक वैदिक अनुष्ठानों के पालन करने वालों के निमित्त इन विस्तृत बातों से अवश्य ही ज्ञात रहा होगा। इसके अतिरिक्त नन्द महाराज भगवान् के पिता जैसा आचरण कर रहे थे अतएव वे परम पवित्र व्यक्ति थे जिन्हें वरुण के मूर्ख सेवक जैसे संसारी नगण्य अधिकारी छू भी नहीं सकते थे।

ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ।
गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८॥

शब्दार्थ

मम—मुझपर; अपि—भी; अनुग्रहम्—दया; कृष्ण—हे कृष्ण; कर्तुम् अर्हसि—कीजिये; अशेष—हर वस्तु के; दृक्—देखने वाले आप; गोविन्द—हे गोविन्द; नीयताम्—ले जाया जा सकता है; एषः—यह; पिता—पिता; ते—आपका; पितृ-वत्सल—हे अपने माता-पिता के अत्यन्त स्नेहिल।

हे कृष्ण, हे सर्वद्रष्टा, आप मुझे भी अपनी कृपा प्रदान करें। हे गोविन्द, आप अपने पिता के प्रति अत्यधिक स्नेहवान् हैं। आप उन्हें घर ले जाँय।

श्रीशुक उवाच
एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ।
आदायागात्स्वपितरं बन्धूनां चावहन्मुदम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; प्रसादितः—संतुष्ट; कृष्णः—कृष्ण; भगवान्—भगवान्; ईश्वर—समस्त नियन्ताओं के; ईश्वरः—परम नियन्ता; आदाय—लेकर; अगात्—चले गये; स्व-पितरम्—अपने पिता को; बन्धूनाम्—अपने सम्बन्धियों के लिए; च—तथा; आवहन्—लाते हुए; मुदम्—हर्ष।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह वरुणदेव से प्रसन्न होकर ईश्वरों के ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण अपने पिता को लेकर घर लौट आये जहाँ उनके सम्बन्धी उन्हें देखकर अत्यधिक हर्षित थे।

तात्पर्य : इस लीला में भगवान् कृष्ण समस्त ईश्वरों के ईश्वर रूप में अपने पद का उदात्त प्रदर्शन करते हैं। समुद्रों का देवता वरुण अत्यन्त शक्तिशाली है फिर भी वह भगवान् कृष्ण के पिता तक की पूजा करके प्रसन्न था, तो फिर कृष्ण के विषय में कहना ही क्या?

नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ।
कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नन्दः—नन्द महाराज; तु—तथा; अतीन्द्रियम्—इसके पूर्व न देखा गया; दृष्ट्वा—देखकर; लोक-पाल—(समुद्र) लोक के अधिष्ठाता देवता, वरुण का; महा-उदयम्—महान् ऐश्वर्य; कृष्णे—कृष्ण के प्रति; च—तथा; सन्नतिम्—नमस्कार करना; तेषाम्—उनके (वरुण तथा उसके अनुयायियों) द्वारा; ज्ञातिभ्यः—अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से; विस्मितः—चकित; अब्रवीत्—कहा।

नन्द महाराज समुद्र लोक के शासक वरुण के महान् ऐश्वर्य को पहली बार देखकर तथा यह देखकर कि वरुण तथा उसके सेवकों ने किस तरह कृष्ण का आदर किया था, आश्चर्यचकित थे। नन्द ने इसका वर्णन अपने साथी ग्वालों से किया।

ते चौत्सुक्यधियो राजन्मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ।

अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; च—तथा; औत्सुक्य—उत्सुकता से पूर्ण; धियः—उनके मन; राजन्—हे राजा परीक्षित; मत्वा—सोचकर; गोपाः—ग्वाले; तम्—उस; ईश्वरम्—ईश्वर को; अपि—शायद; नः—हमको; स्व-गतिम्—अपने धाम; सूक्ष्माम्—दिव्य; उपाधास्यत्—प्रदान करने वाले हैं; अधीश्वरः—परम नियन्ता।

[वरुण के साथ कृष्ण की लीला को सुनकर] ग्वालों ने विचार किया कि कृष्ण अवश्य ही भगवान् हैं। हे राजन्, उनके मन उत्सुकता से भर गये। उन्होंने सोचा, ''क्या भगवान् हम सबों को भी अपना दिव्य धाम प्रदान करेंगे?''

तात्पर्य : सारे ग्वाले यह सुनकर अत्यन्त उत्तेजित थे कि कृष्ण अपने पिता को बचाने किस तरह वरुणलोक गये। सहसा उनमें यह विचार उठा कि हमारा पाला तो भगवान् से पड़ा है, अतः उन्होंने बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक इस जीवन के अन्त होने पर अपने शुभ गन्तव्य के विषय में आपस में सोचा।

इति स्वानां स भगवान्विज्ञायाखिलदृक्स्वयम् ।
सङ्कल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

इति—ऐसा; स्वानाम्—अपने भक्तों का; सः—वह; भगवान्—भगवान्; विज्ञाय—समझकर; अखिल-दृक्—हर वस्तु को देखने वाला; स्वयम्—स्वयं; सङ्कल्प—कल्पित इच्छा की; सिद्धये—अनुभूति के लिए; तेषाम्—उनकी; कृपया—कृपापूर्वक; एतत्—यह; अचिन्तयत्—सोचा।

सर्वदर्शी होने के कारण भगवान् कृष्ण स्वतः समझ गये कि ग्वाले क्या अभिलाषा कर रहे हैं। उनकी इच्छाओं को पूरा करके उनपर कृपा प्रदर्शित करने के लिए भगवान् ने इस प्रकार सोचा।

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ।
उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

जनः—लोक; वै—निश्चय ही; लोके—जगत में; एतस्मिन्—इस; अविद्या—ज्ञानविहीन; काम—इच्छाओं के कारण; कर्मभिः—कार्यों से; उच्च—श्रेष्ठ; अवचासु—तथा निम्न; गतिषु—लक्ष्यों के बीच; न वेद—नहीं पहचानता; स्वाम्—निजी; गतिम्—लक्ष्य; भ्रमन्—घूमते हुए।

[भगवान् कृष्ण ने सोचा] निश्चय ही इस जगत में लोग ऊँचे तथा नीचे गन्तव्यों के बीच भटक रहे हैं, जिन्हें वे अपनी इच्छाओं के अनुसार तथा पूरी जानकारी के बिना किये गये कर्मों के माध्यम से प्राप्त करते हैं। इस तरह लोग अपने असली गन्तव्य को नहीं जान पाते।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने विस्तार से बतलाया है कि किस तरह यह श्लोक भगवान् के धाम श्री वृन्दावन के नित्यमुक्त वासियों पर लागू होता है। *श्रीमद्भागवत* का एक मूल दार्शनिक सिद्धान्त दो प्रकार की माया—योगमाया तथा महामाया अर्थात् जीवन की आध्यात्मिक और भौतिक अवस्थाओं—के बीच का अन्तर है। यद्यपि कृष्ण सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ परम पुरुष हैं किन्तु वैकुण्ठ-लोक के उनके पार्षद उनसे इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वे उन्हें अपना प्रिय पुत्र, मित्र, प्रेमी इत्यादि मानते हैं। अतएव उनका अतीव हर्षयुक्त प्रेम कोरे सम्मान की सीमाओं को लाँघ सकता है और वे यह भूल जाते हैं कि कृष्ण समस्त ब्रह्माण्डों के परमेश्वर हैं। इस तरह उनका शुद्ध घनिष्ट प्रेम असीम विस्तार कर लेता है। कृष्ण को असहाय बालक, सुन्दर सखा या साथी मानने के कार्यों को कृष्ण के ईश्वर-पद के प्रति अविद्या की अभिव्यक्ति माना जा सकता है किन्तु वृन्दावनवासी कृष्ण के राजसी रूप की उपेक्षा करके अपना ध्यान उनके असीम सौन्दर्य पर केन्द्रित करते हैं क्योंकि वही उनका प्राणाधार है।

वस्तुत: भगवान् कृष्ण को परम नियन्ता तथा ईश्वर कहना एक प्रकार का राजनैतिक विश्लेषण है क्योंकि यह शक्ति और नियंत्रण जो तभी महत्त्वपूर्ण हो सकता है जब जीव अपने से उच्च जीव के प्रति प्रेम में पूर्णतया समर्पित नहीं होता। दूसरे शब्दों में, नियंत्रण तो स्पष्ट दिखाई देने लगता है या अनुभव होने लगता है जब उस नियंत्रण का विरोध होता है उदाहरणार्थ, एक पवित्र एवं कानून का पालन करने वाला नागरिक एक पुलिसवाले को मित्र तथा हितैषी समझता है, जबकि अपराधी उसे दण्ड के भयावह प्रतीक के रूप में देखता है। जो लोग सरकारी नीतियों के हामी हैं, वे यह नहीं अनुभव करते कि सरकार उनपर नियंत्रण रख रही है अपितु यह कि वह उनकी सहायक है।

इस तरह भगवान् कृष्ण उन लोगों के द्वारा जो उनके सौन्दर्य तथा लीलाओं से पूर्णतया मुग्ध नहीं हैं, एक ''नियन्ता'' तथा ''परमेश्वर'' के रूप में देखे जाते हैं। जो लोग भगवान् कृष्ण से पूरी तरह प्रेम करते हैं, वे उनके उदात्त आकर्षक अंगों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। वे उनसे अपने इस प्रकार के सम्बन्ध के कारण उनकी नियामक शक्ति पर उतना ध्यान नहीं देते।

व्रजवासियों ने ईशभावनामृत की निम्न अवस्थाओं को लाँघ दिया है किन्तु उन तक पहुँच नहीं पाए हैं इसका प्रमाण यह है कि भगवान् की सारी लीलाओं के दौरान वे प्राय: ''स्मरण'' करते हैं कि कृष्ण ईश्वर हैं। सामान्यतया उन्हें इस स्मरण पर आश्चर्य होता है क्योंकि वे कृष्ण को अपना मित्र, प्रेमी

इत्यादि के रूप में देखने में लीन रहते आए हैं।

काम शब्द प्राचीन काल से ही भौतिक इच्छा या किसी ऐसी प्रबल आध्यात्मिक इच्छा को द्योतित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है कि वह प्रबल भौतिक इच्छा का पर्यायवाचक बन जाती है। फिर भी मौलिक अन्तर तो बना ही रहता है—भौतिक इच्छा स्वार्थमय तथा आत्म-तृप्तिप्रद होती है, जबकि आध्यात्मिक इच्छा स्वार्थ से रहित तथा पूर्णतया अन्य के, भगवान् के, आनन्द के लिए होती है। इस तरह वृन्दावनवासी अपने नैतिक कृत्य एकमात्र अपने प्रिय कृष्ण की प्रसन्नता के लिए करते थे।

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस धरा पर कृष्ण के अवतरण का सारा उद्देश्य जीवों को भगवद्धाम जाने के लिए आकृष्ट करना है। इसके लिए दो बातें आवश्यक होती हैं—उनकी लीलाएँ आध्यात्मिक पूर्णता के सौन्दर्य को प्रदर्शित करती हैं और वे किसी न किसी तरह प्रासंगिक जान पड़ने के कारण इस जगत के बद्धजीवों के लिए रोचक होती हैं। *भागवत* में प्राय: कहा गया है कि भगवान् कृष्ण एक तरुण नट की तरह खेल करते हैं और निस्सन्देह अपने नित्य भक्तों को नाटक में लगाये रखते हैं। इस तरह कृष्ण मन ही मन सोचते हैं कि इस जगत के लोग सचमुच ही अपने चरम गन्तव्य को नहीं जानते। इसी तरह वे अपने नित्य मुक्त पार्षदों के बारे में भी सोचते हैं, जो इस जगत में ग्वालों की तरह क्रीड़ा करते हैं।

कृष्ण के मुक्त पार्षदों के संदर्भ में लगाए गए इस श्लोक के श्लिष्ट अर्थ के अतिरिक्त, कृष्ण सामान्य लोगों के विषय में पूर्णतया सीधी और तीखी आलोचना करते हैं। जब उन बद्धजीवों पर इसे लागू किया जाता है, जो इस ब्रह्माण्ड-भर में वास्तव में विचरण करते रहते हैं, तो उनका यह कथन कि लोग अज्ञान तथा कामवासनावश कार्य करते हैं किसी अधिक गम्भीर आध्यात्मिक अर्थ से कम नहीं होता। मनुष्य सामान्यतया अनजान होते हैं और वे अपने चरम गन्तव्य पर गम्भीरता से विचार नहीं करते। श्रीकृष्ण कुछ ही सरल शब्दों में कई जटिल बातें कहने में समर्थ हैं। हम कितने भाग्यशाली हैं कि ईश्वर ऊर्जा के शुष्क क्षेत्र नहीं हैं—इन्द्रियातीत, तेज पुंज या शून्य—प्रत्युत वे साकार गुणों से पूर्ण हैं और हम जो कुछ कर सकते हैं, वे उससे अधिक अच्छे ढंग से कर सकते हैं—यह उनके बोलने की प्रभावशाली शैली से प्रमाणित है।

इति सञ्चिन्त्य भगवान्महाकारुणिको हरिः ।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों में; सञ्चिन्त्य—अपने आप सोच कर; भगवान्—भगवान्; महा-कारुणिकः—अत्यन्त कृपालु; हरिः—भगवान् हरि ने; दर्शयाम् आस—दिखलाया; लोकम्—लोक, वैकुण्ठ; स्वम्—अपना; गोपानाम्—ग्वालों को; तमसः—भौतिक अंधकार से; परम्—परे।

इस प्रकार परिस्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए परम दयालु भगवान् हरि ने ग्वालों को अपना धाम दिखलाया जो भौतिक अंधकार से परे है।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि परम सत्य अपने निजी नित्य धाम में निवास करते हैं। हम लोग शान्ति तथा सौन्दर्य से घिरकर अधिकाधिक सुखपूर्वक रहने का प्रयास करते हैं। तो भला किस तरह तर्क के नाम पर हम अपने स्रष्टा परमात्मा एवं उनके सुखद सुन्दर धाम से ईर्ष्या कर सकते हैं, जो सामान्य लोगों में भगवद्धाम के नाम से विख्यात है?

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥ १५॥

शब्दार्थ

सत्यम्—अनश्वर; ज्ञानम्—ज्ञान; अनन्तम्—अनन्त; यत्—जो; ब्रह्म—ब्रह्म का; ज्योतिः—तेज; सनातनम्—नित्य; यत्—जो; हि—निस्सन्देह; पश्यन्ति—देखते हैं; मुनयः—मुनिगण; गुण—भौतिक प्रकृति के गुण; अपाये—शमित होने पर; समाहिताः—समाधि में लीन।

भगवान् कृष्ण ने अनश्वर आध्यात्मिक तेज प्रकट किया जो असीम, चेतन तथा नित्य है। मुनिजन उस आध्यात्मिक जीव को समाधि में देखते हैं जब उनकी चेतना भौतिक प्रकृति के गुणों से मुक्त रहती है।

तात्पर्य : श्लोक १४ के अनुसार भगवान् कृष्ण ने वृन्दावनवासियों को अपना निजी धाम, कृष्ण-लोक नामक दिव्य लोक दिखलाया। यह तथा अन्य असंख्य वैकुण्ठ-लोक ब्रह्मज्योति के असीम समुद्र में तैरते रहते हैं। यह ब्रह्मज्योति यथार्थतः आध्यात्मिक आकाश है, जिसको, स्वाभाविक ही है, कृष्ण ने भी वृन्दावनवासियों को दिखलाया। उदाहरणार्थ, यदि हम किसी बच्चे को चाँद दिखलाना चाहें तो कहते हैं, "वह देखो आकाश में। वह देखो चन्द्रमा आकाश में वहाँ है।" इसी तरह कृष्ण ने वृन्दावनवासियों को विस्तृत आध्यात्मिक आकाश दिखलाया किन्तु जैसाकि श्लोक १४ तथा अगले श्लोक १६ में बल दिया गया है, भगवान् के पार्षदों का वास्तविक गन्तव्य उनका निजी आध्यात्मिक

लोक था।

ते तु ब्रह्महृदम्नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात्पुरा ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; तु—तथा; ब्रह्म-ह्रदम्—ब्रह्महृद नामक सरोवर में; नीताः—लाये गये; मग्नाः—डुबाये गये; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; च—तथा; उद्धृताः—ऊपर निकाले गये; ददृशुः—देखा; ब्रह्मणः—परब्रह्म का; लोकम्—दिव्य लोक; यत्र—जहाँ; अक्रूरः—अक्रूर ने; अध्यगात्—देखा था; पुरा—इसके पूर्व।

भगवान् कृष्ण सारे ग्वालों को ब्रह्महृद ले आये, उनसे जल के भीतर डुबकी लगवाई और फिर ऊपर निकाल लिया। जिस महत्त्वपूर्ण स्थान से अक्रूर ने वैकुण्ठ को देखा था, वहीं इन ग्वालों ने भी परम सत्य के लोक को देखा।

तात्पर्य : श्लोक १५ में उल्लिखित ब्रह्मज्योति नामक दिव्य ज्योति के असीम प्रसार की उपमा ब्रह्महृद नामक सरोवर से दी गई है। भगवान् कृष्ण ने ग्वालों को इस सरोवर में डुबकी लगवाई अर्थात् उन्हें निर्विशेष ब्रह्म से अवगत कराया। लेकिन उसके बाद उन्हें उच्चतर ज्ञान तक पहुँचाया जैसाकि *उद्धृताः* शब्द से सूचित होता है। यही भगवान् का निजी लोक है। जैसाकि यहाँ स्पष्ट उल्लेख है—*ददृशुः ब्रह्मणो लोकम्*—उन्होंने अक्रूर की ही भाँति परब्रह्म के दिव्य धाम का दर्शन किया।

चेतना के विकास का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है। सामान्य चेतना के अन्तर्गत हम नाना प्रकार की भौतिक वस्तुओं को देखते और उनकी ओर आकृष्ट होते हैं। आध्यात्मिक चेतना की प्रथम अवस्था तक ऊपर उठकर हम भौतिक विविधता को पार करके *अभिन्नित एक* पर ध्यान को एकाग्र करते हैं, जो पीछे रहता है और अनेक को अस्तित्व में लाता है। अन्त में कृष्णभावनामृत तक उठकर हम देखते हैं कि परम आध्यात्मिक एक में अपनी शाश्वत अनेकता रहती है। चूँकि यह जगत नित्य जगत का प्रतिबिम्ब मात्र है अतएव हमें इस एक में आध्यात्मिक विविधता की आशा करनी चाहिए और यह निस्सन्देह हमें पावन ग्रन्थ *श्रीमद्भागवत* में देखने को मिलती है।

निपुण पाठक यह ध्यान दें कि अक्रूर सम्बन्धी लीला ग्वालों की इस घटना के बाद *भागवत* में आई है। शुकदेव गोस्वामी इसका कारण यह बतलाते हैं कि अक्रूर ने *पुरा* अर्थात् ''इसके पूर्व'' ही वैकुण्ठ का दर्शन किया था जिसका अर्थ यह हुआ कि शुकदेव गोस्वामी तथा महाराज परीक्षित के मध्य हुई वार्ता के कई वर्ष पूर्व ये घटनाएँ घट चुकी थीं।

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिवृताः ।
कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७॥

शब्दार्थ

नन्द-आदयः—नन्द महाराज तथा अन्य ग्वाले; तु—तथा; तम्—उसको; दृष्ट्वा—देखकर; परम—परम; आनन्द—आनन्द द्वारा; निवृताः—प्रसन्नता से अभिभूत; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; च—तथा; तत्र—वहाँ; छन्दोभिः—वैदिक स्तोत्रों से; स्तूयमानम्—स्तुति किये जाते हुए; सु—अत्यधिक; विस्मिताः—चकित।

जब नन्द महाराज तथा अन्य ग्वालों ने वह दिव्य धाम देखा तो उन्हें परम सुख की अनुभूति हुई। वे स्वयं कृष्ण को साक्षात् वेदों से घिरे एवं उनके द्वारा स्तुति किये जाते देखकर विशेष रूप से चकित थे।

तात्पर्य : यद्यपि वृन्दावनवासी अपने को सामान्य जन मानते थे किन्तु कृष्ण चाहते थे कि वे अपने अद्वितीय सौभाग्य को जानें। इस तरह भगवान् ने उन्हें यमुना नदी के एक सरोवर के भीतर अपना निजी धाम दिखलाया। ग्वाले यह देखकर चकित थे कि भगवान् के धाम का आध्यात्मिक वातावरण वैसा ही था जैसाकि उनके पृथ्वी लोक के वृन्दावन का था और जिस तरह कृष्ण उनके वृन्दावन में उपस्थित थे उसी तरह उनकी अद्वितीय दृष्टि में वैकुण्ठ में भी वे उपस्थित दिखे।

जैसाकि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इंगित करते हैं कि ये पद्य बतलाते हैं कि कृष्ण ने ग्वालों को न केवल वैकुण्ठ-लोक का क्षणिक दर्शन कराया अपितु उन्होंने शाश्वत लोकों में सबसे बड़ा अपना कृष्ण-लोक तथा वृन्दावनवासियों को जो कृष्ण को सर्वाधिक प्रेम करते थे, उनका असली स्थान भी दिखलाया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''कृष्ण द्वारा वरुणलोक से नन्द महाराज की रक्षा'' नामक अट्ठाइसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।